अंतर्मन की व्यथा

अनकही पीड़ा और आत्मचिंतन की कविताएँ

डॉ रश्मि शर्मा

BlueRoseONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS
India | U.K.

Copyright © Dr Rashmi Sharma 2025

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

For permissions requests or inquiries regarding this publication, please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: **978-93-7310-037-1**

Cover Design: Goon
Typesetting: Sagar

First Edition: November 2025

आभार

सबसे पहले तो मैं अपने गुरू भगवान बजरंग बली के चरणो में नमन करती हूँ, जिनकी कृपा से मैं ये छोटा सा प्रयास कर पायी। मर्यादा पुरूषोत्तम राम व भगवान श्री कृष्ण के चरणों में नमन करती हूँ जिनकी प्रेरणा, कृपा व आशीर्वाद से मैंने रामायण और महाभारत के पात्रों को चुना। मैं अपने परिवार के सदस्यों की हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने मेरा उत्साह बढ़ाया और लिखने के लिए प्रेरित किया। मैं उन पाठकों की भी आभारी हूँ जो इस कृति को पढ़कर सार्थक बनाएंगे।

समर्पण

यह काव्य संग्रह मर्यादा पुरूषोत्तम राम, गीता प्रदाता भगवान कृष्ण और मेरे गुरू भगवान हनुमान जी को समर्पित है। मैंने जो कुछ भी लिखने का प्रयास किया है, वह केवल इनके आशीर्वाद और कृपा से ही किया है। इनकी कृपा व आशीर्वाद और प्रेरणा के बिना कुछ भी लिखना सम्भव नहीं था। मेरा यह छोटा सा प्रयास इनके चरणों में समर्पित है।

दो शब्द

हम कोई भी कार्य अपनी इच्छा से नहीं करते, इसमें कहीं न कहीं ईश्वर की प्रेरणा होती है, हम स्वयं को श्रेय देते हैं कि हमने यह कार्य किया है, जबकि हम सिर्फ एक माध्यम मात्र होते हैं, कराते तो ईश्वर ही हैं।

कविता लिखने का मुझे पहले से ही शौक है। ईश्वर की प्रेरणा से मेरे मन में सबसे पहले विचार आया कि क्यों न मैं भगवान श्री राम से पूछूं कि उन्होंने माँ सीता का त्याग क्यों किया था? बस मन में विचार आते गए और कविता बन गई। कुछ पात्र ऐसे हैं जिनका मूक त्याग है जैसे– माँ उर्मिला, उत्तरा आदि।

फिर मन में आया कि सभी के अन्तर्मन में द्वन्द्व तो होगा ही। उनके अन्तर्द्वन्द्व को मैंने अपने शब्दों में लिखने का प्रयास किया है। आशा है यह संग्रह आपको पसन्द आएगा। कृपया मेरी त्रुटियों पर ध्यान न देकर इसका आनंद उठाएं।

अनुक्रमणिका

1.	स्तुति	1
2.	माँ सीता का क्यों त्याग किया?	5
3.	भरत संताप	9
4.	माँ सीता	13
5.	माँ अहिल्या की व्यथा	17
6.	धृतराष्ट्र	21
7.	द्रौपदी	25
8.	अभिमन्यु	31
9.	एकलव्य	35
10.	रावण	39
11.	अर्जुन विषाद	43
12.	कर्ण	47
13.	भीष्म पितामह	51
14.	बेबस उत्तरा	55
15.	कुन्ती	59
16.	गान्धारी	63
17.	माँ उर्मिला	67
18.	जटायु	71
लेखिका का परिचय		73

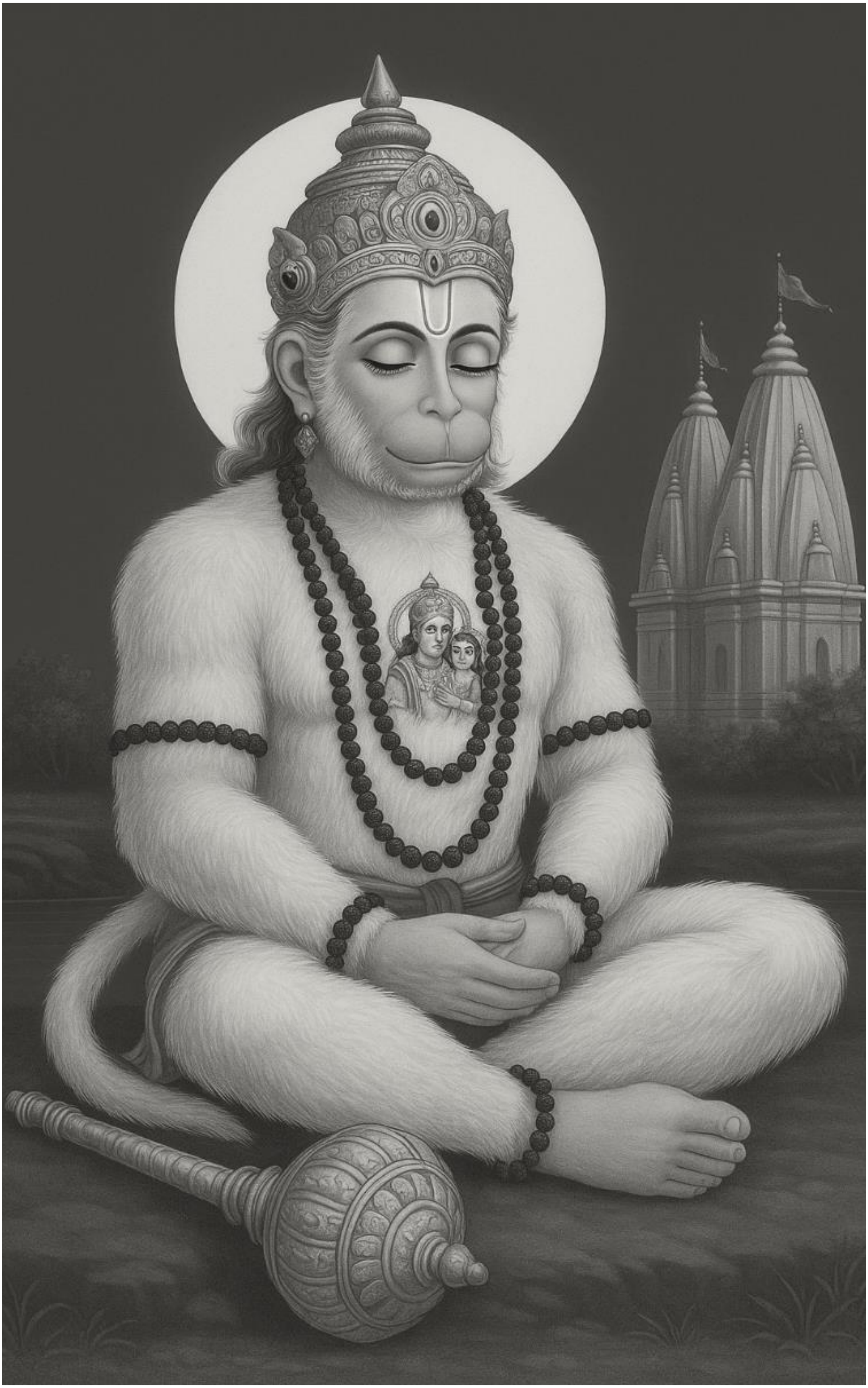

१- स्तुति

श्री राम के सेवक तुम्हीं
माँ अंजनी के लाल हो
इस कलयुगी संसार में
संकट निवारक आप हो।

हो केसरी नंदन तुम्हीं
तुम ही पवन के पुत्र हो
माँ अंजनी के लाल तुम
अतुलित बल से युक्त हो

हो अष्ट सिद्धि के दाता तुम
नव निधियों के भण्डार हो
शरणागत के तुम रक्षक हो
सम्पूर्ण गुणों की खान हो

माँ सीता को खोजा तुमने
सुरसा का दंभ कर दिया दूर
फिर करके नमन उस सुरसा को
श्री राम का कार्य कर दिया पूर्ण

अहिरावण को कर भुजाहीन
संतो को पार लगाया था
लक्ष्मण के प्राणों का संकट
प्रभु तुमने दूर भगाया था।

हे चिरंजीवी, करुणा निधान
मेरा भी संकट दूर करो
अपने चरणों में दे दो जगह
प्रभू मेरा मनोरथ पूर्ण करो

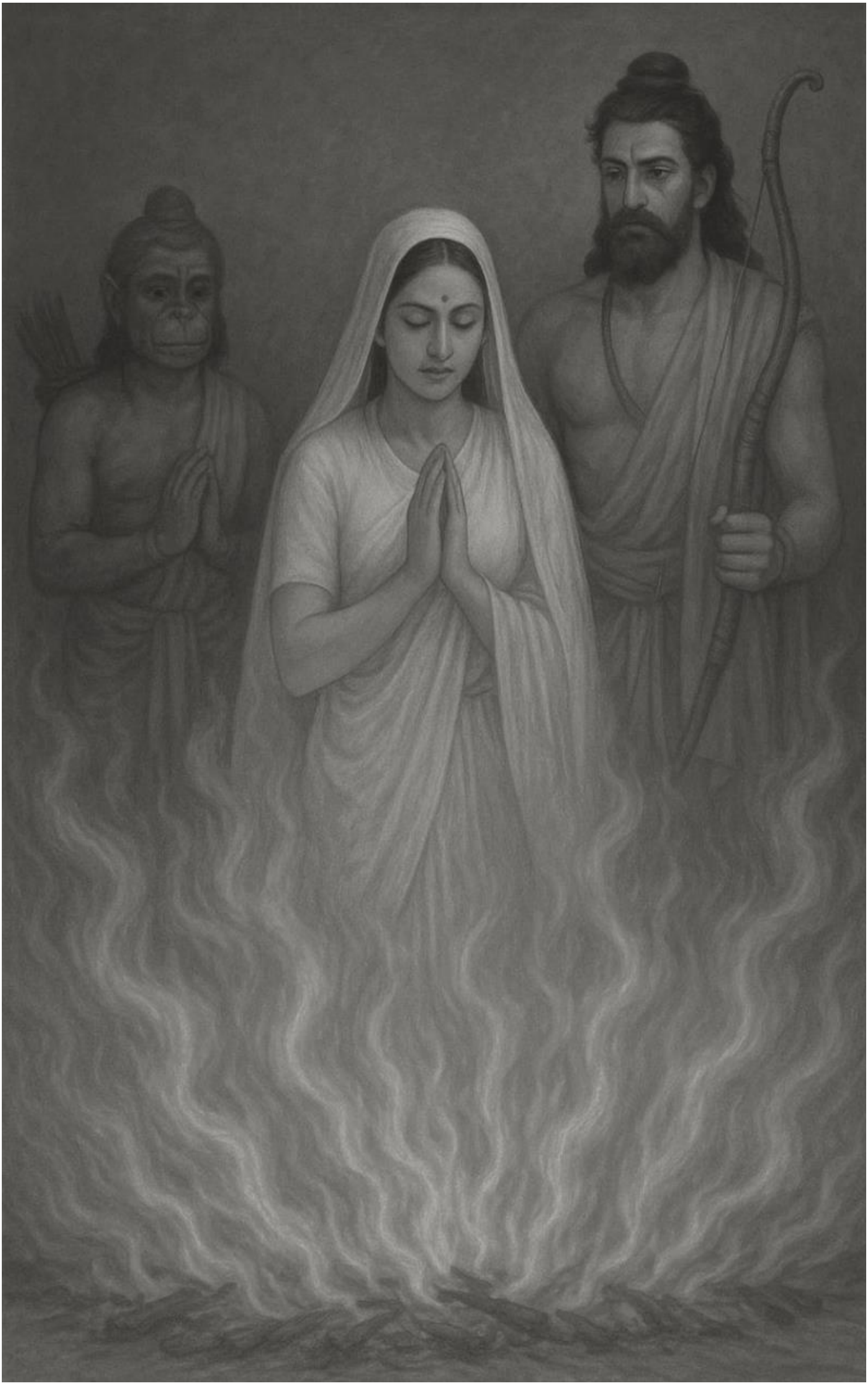

२- माँ सीता का क्यों त्याग किया?

आप प्रभु श्री राम हो
दृढ़ प्रतिज्ञ और सुविज्ञ
करुणा के निधान हो
आप प्रभु श्री राम हो

करो निवारण दुविधा का प्रभु
मैं दोषी नादान हूँ
मन में एक प्रश्न है उभरा
सोच के विकल, उदास हूँ ।

माँ सीता थी पतित पावनी
सती धर्मिता और साध्वी
ऐसी शुचिता माँ सीता का
प्रभु तुमने क्यों त्याग किया था,

राज–सुखों को दे तिलांजलि
स्व सुख त्याग जो बनी तपस्विनी
ऐसी पावन पतिव्रता का
प्रभु तुमने क्यों त्याग किया था ?

साथ चली जो बन संन्यासिनी
निर्जन और सुनसान वनों में
पति धर्म को सिर माथे रख
किया समर्पण तव चरणों में
उस गंगा सी पावन माँ का
प्रभु तुमने क्यों त्याग किया था ?

सर्वोत्तम प्रभु आप पुत्र हो
पर पति धर्म क्यों छोड़ दिया था?
एक साधारण जन की खातिर
माँ को क्यों वनवास दिया था ?

माँ सीता की पावनता से
प्रभु आप अनभिज्ञ नहीं थे
फिर निश्छल बेदाग मात का
प्रभु तुमने क्यों त्याग किया था?

चाहते गर तुम राज त्याग कर
माँ सीता का साथ निभाते
जिन कष्टो को माँ ने झेला
उनका बोध जरा कर पाते

पर तुम ऐसा कर नहीं पाए
होकर भी सर्वज्ञ प्रभू तुम
माँ सीता को चुन नहीं पाए

क्या अपना धर्म निभाने हेतु
प्रजा की रक्षा करने हेतु
माँ सीता का त्याग किया था
प्रभु बोलो क्यों त्याग किया था ?

नम्र प्रार्थना इस पुत्री की
संशय दूर करो भगवन तुम
क्यों गंगा सी पावन निर्मल
मेरी माँ का त्याग किया था
प्रभु तुमने क्यों त्याग किया था?

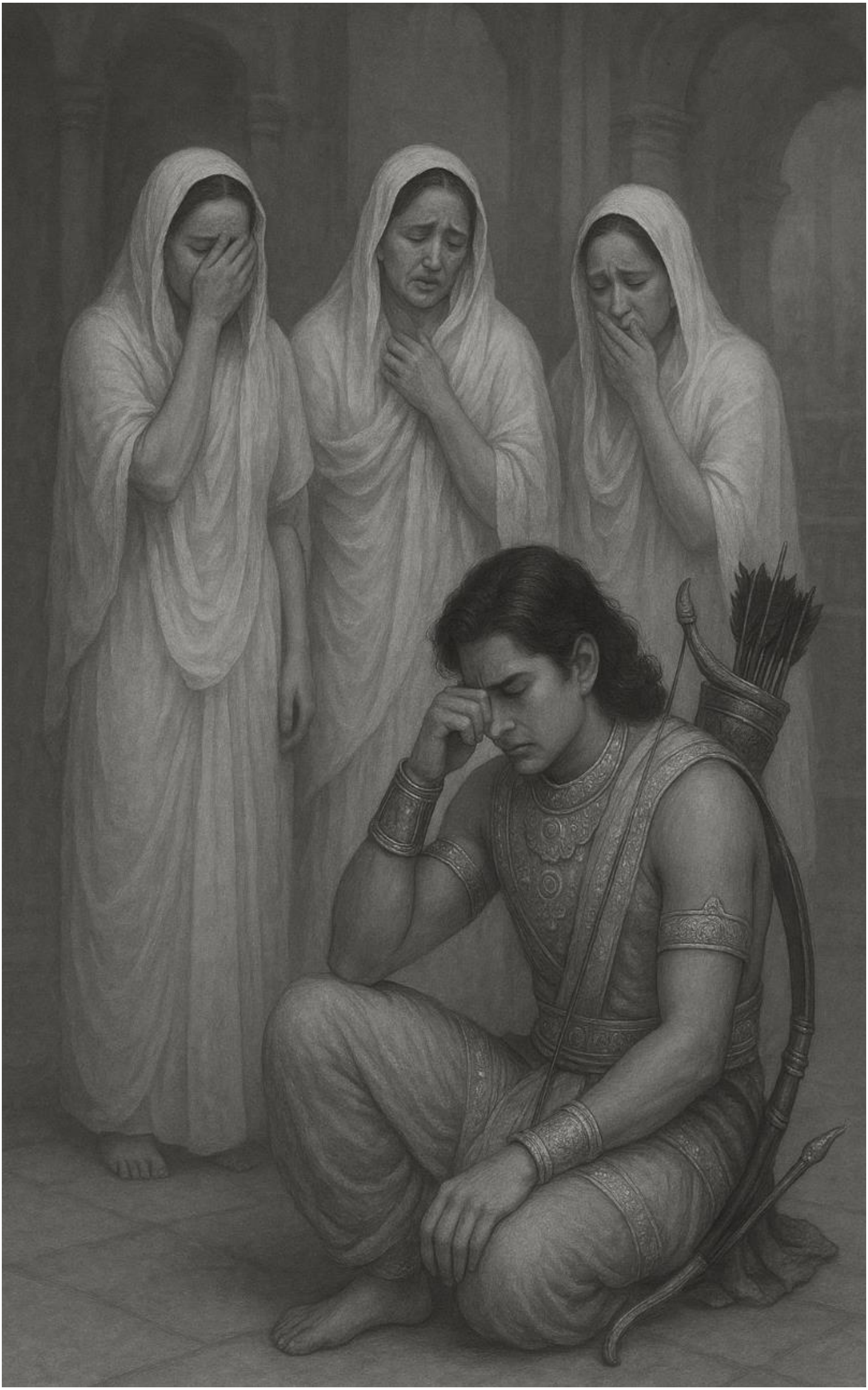

3- भरत संताप

मूक बनी थी अयोध्या नगरी
शोक में डूबा था राज प्रासाद
जला नहीं किसी घर में दीपक
छाया था चहुँ ओर विषाद

देख नगर की नीरवता को
भरत त्रस्त से दीख रहे थे
रुक गए वहीं पे रथ के पहिए
अशुभ शकुन भी कुछ हो रहे थे

फड़क रहे थे वाम अंग
पायल की न रुन झुन सुनती थी
ना पनघट पर गागर थी
ना घंटी की ध्वनि सुनती थी

राज महल में करके पदार्पण
जब पहुँचे थे केकैयी नंदन
बाँह फैलाकर दौड़ी केकैयी
करने को उनका आलिंगन

पीछे माँ कौशल्या, सुमित्रा
बोझिल कदमों से थीं आई
नयनों से बह रहे थे आंसू
थी उनकी काया कुम्हलाई।

माथे पर बिंदिया न चमकती
चूड़ी विहीन कलाई थी
सजी नहीं थी मांग सिंदूर से
कैसी वो घड़ी आई थी

लगे बिलखने बालक सम वो
बैठ गए पृथ्वी पे वहीं
चारों ओर अंधेरा ही था
आशा की न थी किरण कहीं

सुनकर केकैयी के कृत्य को
करने लगे वो करुण पुकार
कैसी जननी का हूँ पुत्र मैं
मुझको है खुद पर धिक्कार

माता सुनी न कुमाता कहकर
केकैयी को धिक्कार दिया
कैसे तुमने प्रिय राम को
वन के लिए निकाल दिया

फटा नहीं क्या ह्रदय तुम्हारा
तीनों को वनवास दिया
पिता की छाया छीनी सिर से
हमको क्यों अनाथ किया?

हुई कंलकित ममता तुम्हारी
हत्यारिन कहलाओगी
माओं का शृंगार छीनकर
क्या सुख से रह पाओगी?

जहाँ मेरे श्री राम नहीं हैं
कैसे वहाँ रह पाऊँगा
तुमने कैसे सोच लिया कि
सिंहासन मैं पाऊँगा

नहीं चाहिए मुझे सिंहासन
न ही अयोध्या पर अधिकार
मुझे तो बस श्री राम के चरणों
में रहना है अब स्वीकार

४–माँ सीता

दूर एकांत में हरी घास पर
व्याकुल सी बैठी थी सीता
उथल– पुथल थी मन में उनके
पर लगती थी शान्त–सुभीता

प्रश्न अनेकों मन में उठते
किन्तु दिशा कोई न दिखती
पथ कंटक से भरा हुआ था
आशा की कोई किरण न दिखती

खोई हुई थी गहन सोच में
रह-रह उठती हूक ह्रदय में
राजमहल में बीता बचपन
राम मिले मुझे पति रुप में

आ गई थी मैं अवध पुरी में
रघुनंदन की पत्नी बनकर
सब कर्तव्य निभाए मैने
वधू, पुत्री और भार्या बनकर

लेकिन समय ने करवट बदली
नियति में कुछ और लिखा था
संकट के काले मेघों ने
राज प्रासाद को घेर लिया था

छोड़ महल के राजसुखों को
चली पति संग गहन वनों में
पति की छाया बनकर के मैं
भटक रही थी सघन वनों में

एक दूजे का संबल बनकर
भूल गए थे सारे दुख हम
लक्ष्मण जैसे भाई के संग
भूले सारे कष्टों को हम

क्रूर समय ने रंग दिखाया
लंकापति ने पाश फैलाया
और धोखे से हरण मेरा कर
रघुनंदन से विरह कराया

शोक विरह में जीवित रहकर
कष्टों में जीवन को बिताया
क्रूर दशानन के पंजों से
कैसे मैंने खुद को बचाया

लंका में बीता हुआ हर पल
आज भी मन को करता प्रकंपित
कैसे दशानन के आने पर
हर क्षण रहती थी मैं सशंकित

लंका पति पर विजय प्राप्त कर
लेकर चले प्रभु जब मुझको
अग्नि परीक्षा ली थी उन्होंने
अपनाने से पहले मुझको

लेकिन सुन धोबी की वार्ता
त्याग कर दिया फिर से मेरा
प्रभु की निष्ठुरता के समक्ष फिर
हार गया था समर्पण मेरा

पत्नी धर्म निभाया मैंने
वनों में घूमी बन संन्यासिनी
लंकापति का शोषण झेला
बनकर मानो एक वैरागिनी

पत्नी धर्म से विमुख नहीं थी
फिर भी जीवन रहा कष्टमय
त्याग समर्पण अपनाकर भी
जीवन सदा ही रहा दुखमय।

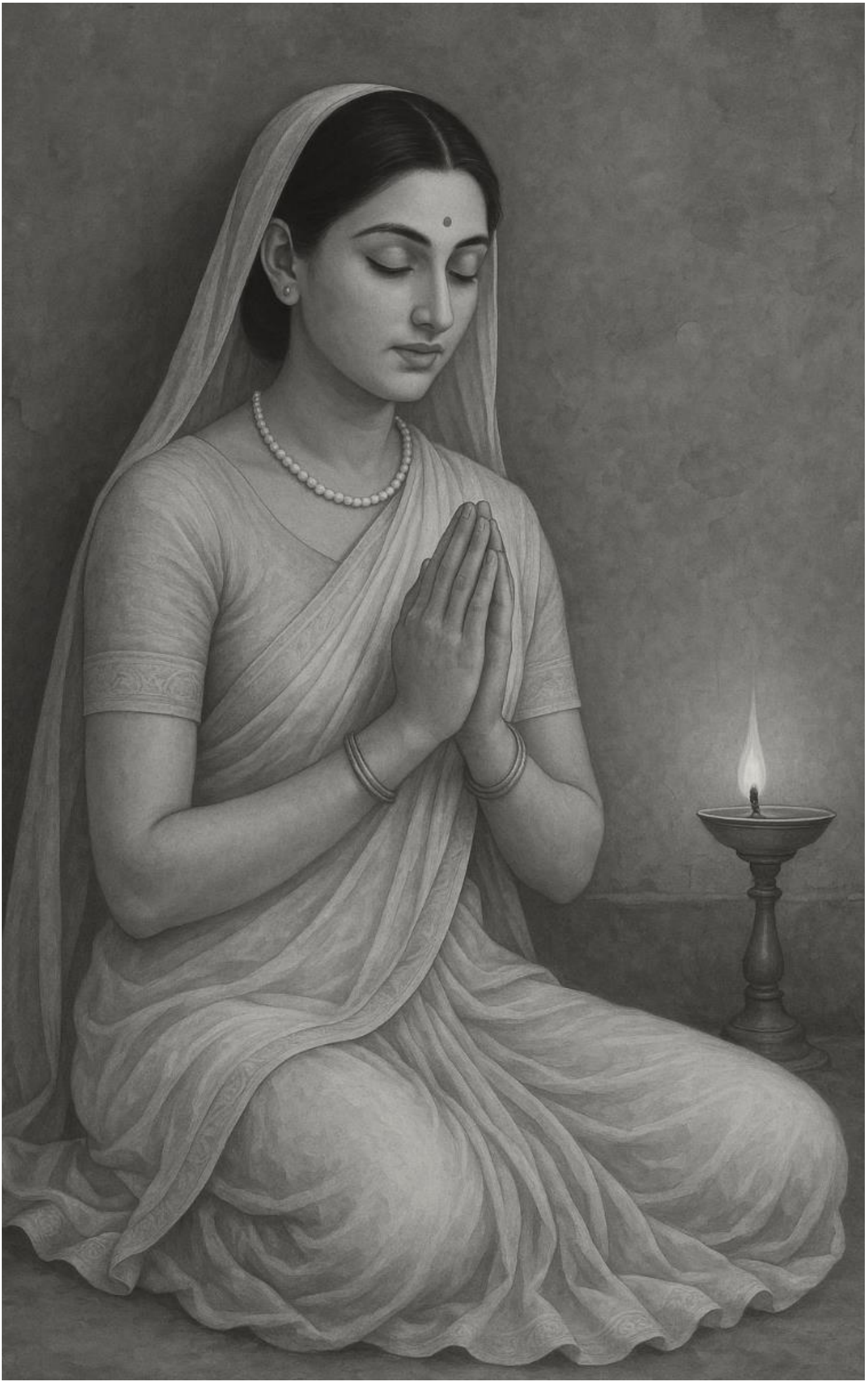

5- माँ अहिल्या की व्यथा

मैंने क्या अपराध किया था?
क्यों मुझको पाषाण किया था?
दोषी तो प्रभु इन्द्र देव थे
फिर मेरा क्यों त्याग किया था?

देवलोक के नरपति होकर
कैसा अधर्म किया सुरेन्द्र ने
छल से मेरा सतीत्व भंग कर
किया तिरस्कृत मुझे महेन्द्र ने

मैं साध्वी से पतिता बन गई
पति की मैं अपराधिनी बन गई
उस सुरेश के इस कुकृत्य से
मैं नारी से पत्थर बन गई।

उसके इस दुष्कर्म का भगवन
मुझको ही क्यों दंड मिला था?
बिना किसी अपराध के भगवन
मुझको ही क्यों शाप मिला था?

बीत गए हैं वर्ष सहस्त्रों
शापित जीवन खत्म हुआ है
अब आकर प्रभु के स्पर्श से
मेरा तन– मन शुद्ध हुआ है

चाहे दोष पुरुष का हो प्रभु
तब भी शोषित होती नारी
कोप का भागी बनती पल–पल
होती बस अपमानित नारी

क्या प्रभु नर सत्ता के मद में
यूं ही अत्याचार करेगा?
कब तक अहिल्या शापित होगी
कौन उनका उद्धार करेगा?

आज सहस्त्रों वर्ष बाद प्रभु
मुझ पर जो उपकार किया है
कर स्पर्श मूरत का मेरी
प्राणों का संचार किया है

विनती आज यही है भगवन
पूर्ण उसे प्रभु तुम कर देना
जब भी नारी का शोषण हो
धरा पे अपने पग रख देना

6- धृतराष्ट्र

कुरु भूमि थी रक्त से रंजित
लाशों का था लगा अंबार
दुःख से और करुणा से विह्वल
पूछ रहा था बारम्बार

हे संजय बतलाओ मुझको
मेरा कुरुनंदन कैसा है?
भीम सेन को धराशायी कर
क्या कुरु वंश का मान किया है?

कुरु वंश के नाश को सुनकर
बैठ गए धृतराष्ट वहीं पर
जिसके मोह में युद्ध किया था
वही रहा नहीं था धरा पर

बोले माधव को लक्ष्य कर
तुम्हीं बताओ हे मधुसूदन!
मेरे दुर्योधन का वध कर
सुखी रहेगा कौन यहाँ पर

यदि मैंने सिंहासन चाहा
तो क्या कोई अपराध किया था
अपने पुत्र की खातिर माधव!
मैंने ये अन्याय किया था

पुत्र मोह में पड़कर केशव
पथ से था मैं भटक गया
सत्ता के लालच ने मेरे
पूरे कुल का नाश किया

यदि विवेक से काम मैं लेता
दोनों को सम मान मैं देता
दुर्योधन के दुस्साहस में
यदि मैं उसका साथ न देता

पाँचों पाण्डव को अपनाकर
ज्येष्ठ भ्रात का फर्ज निभाता
तब महाभारत युद्ध न होता
कौरवों का यूं नाश न होता

सत्ता लोभ में पड़कर मैने
स्वयं अपना ही नाश किया है।
सौ पुत्रों का पिता बनकर भी
खुद अपना विध्वंस किया है

आने वाले युग में मुझको
धरा पे न सम्मान मिलेगा
जब कोई पुत्र मोह में होगा
नाम उसे धृतराष्ट्र मिलेगा

जब इस युद्ध का जिक्र आयेगा
मेरा भी तब नाम आयेगा
और महाभारत का दोषी
सिर्फ मुझे ही कहा जायेगा

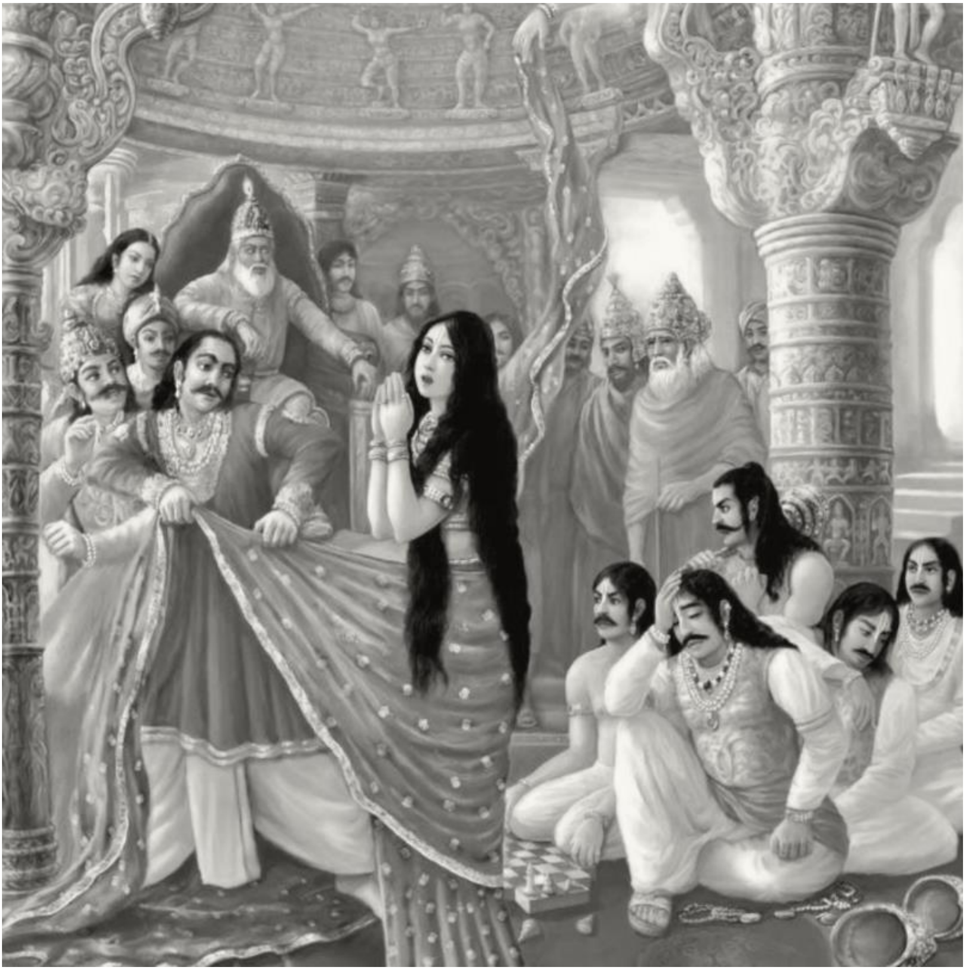

7- द्रौपदी

हे गोविन्द, हे नटवर नागर
तुम हो प्रभु कृपा के सागर
जब जब जिसने तुम्हें पुकारा
आकर प्रभु तब दिया सहारा

मेरे तो प्रभु सखा आप हो
इष्ट आप हो, मित्र आप हो
क्षण भर में पीड़ा को हरते
चाहे पीड़ा बड़ी विकट हो

एक सखा के नाते ही मैं
प्रश्न आपसे पूछ रही हूँ
कुछ शंकाओं का ही निवारण
आज आपसे चाह रही हूँ।

कृपा आपकी थी प्रभु मुझ पर
फिर क्यों जीवन रहा कष्टमय
राजकुमारी होकर के भी
जीवन नहीं बिताया सुखमय

प्रभु मैने तो श्रेष्ठ धनुर्धर
परमवीर अर्जुन को चुना था
पति रुप में उनका वरण कर
दिल पर उनका नाम लिखा था

फिर क्यों माँ कुन्ती ने मुझ पर
इतना बड़ा कहर बरपाया
क्यों पाँचों को पति बनाकर
मेरे सतीत्व पर दाग लगाया

क्या कोई भी नारी जग में
पाँच पति का वरण है करती ?
क्या पाँचों को अपने मन में
एक समान प्यार दे सकती ?

क्या माँ कुन्ती मुझ दुखिया का
दर्द कभी भी समझ पाई थीं
कैसे टुकड़ों में बँटकर मैं
घुट–घुट कर ही जी पाई थी।

कहो पार्थ किस हक से युधिष्ठिर
ने मुझ पर था दांव लगाया
किस हक से उस दुर्योधन ने
भरी सभा में मुझे बुलाया ?

क्या दुःशासन का ये हक था
चीर हरण करता वो मेरा
भीष्म पितामह, गुरु द्रोण ने
क्यों नहीं साथ दिया था मेरा ?

क्यों नहीं छीने शस्त्र हाथ से
क्यों न सभा से किया निष्कासित
क्यों नहीं कौरव पुत्रों को प्रभु
कुरूवंश ने किया प्रताड़ित

क्या गांधारी और कुन्ती माँ
का हृदय पाषाण हो गया ?
क्या सारे हस्तिनापुर में ही
बस कायरों का राज हो गया

नारी को एक वस्तु समझकर
क्यों मानव है खेल खेलता
क्यों अपनी सत्ता के गर्व में
नारी को बस धूल समझता

हे मधुसूदन, यशोदा नंदन
बांके बिहारी, हे जन वंदन
अपनी सखी की शंका मिटा दो
करके कृपा प्रभु इतना बता दो

जो नारी सब कुछ सहती है
वही प्रताड़ित क्यों होती है ?
हर कर्तव्य पूर्ण करके भी
क्यों वह अधूरी सी रहती है ?

नारी नहीं है धूलि चरण की
नारी है मस्तक का टीका
नारी से शोभा   है नर की
नारी श्री मद् भगवदगीता।

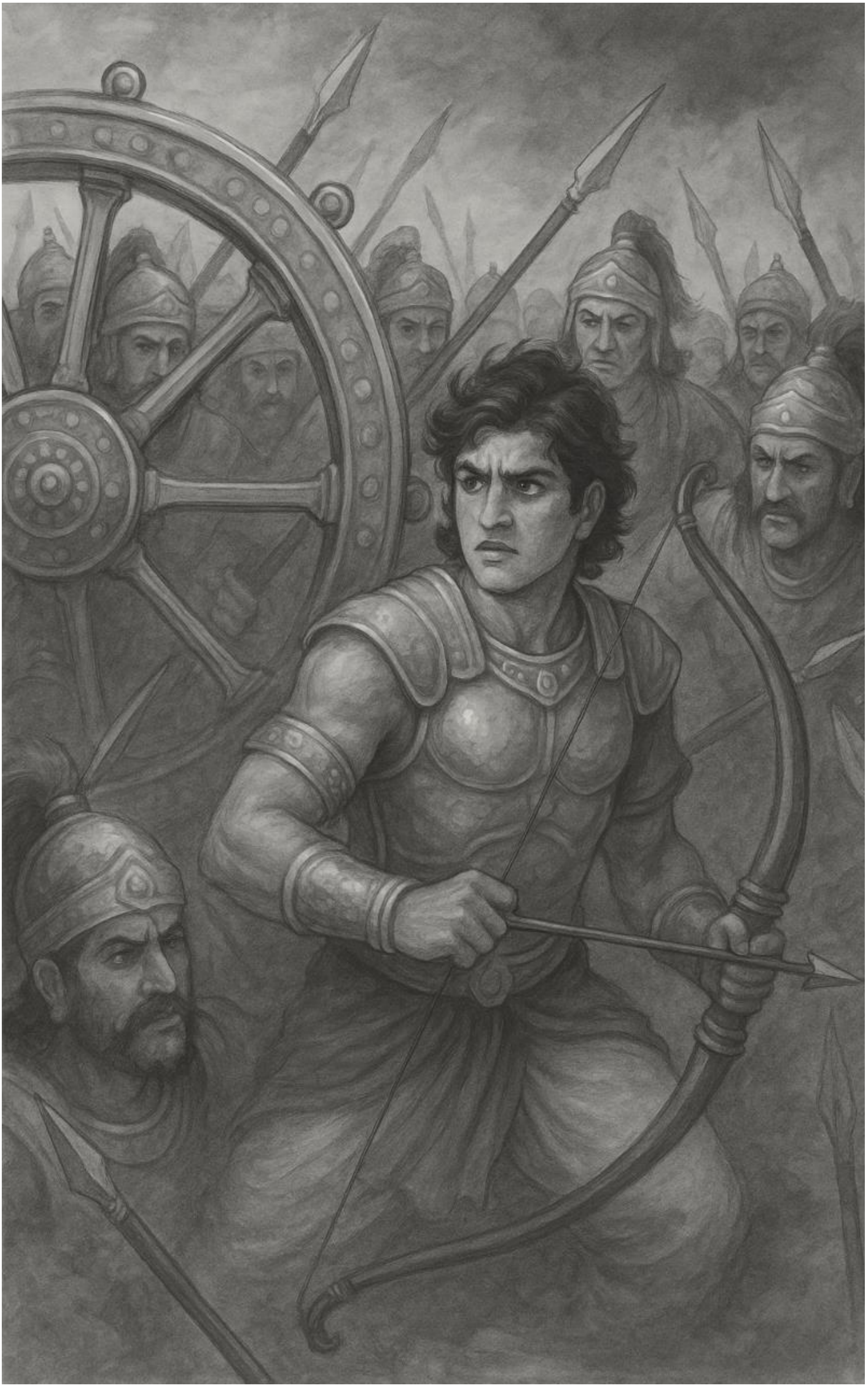

8- अभिमन्यु

पूछ रहा अभिमन्यु भीष्म से
मैंने क्या अपराध किया था?
क्यों मुझको घेरा अपनों ने
क्यों धोखे से वार किया था?

आप पितामह दृढ़ प्रतिज्ञ थे
परोपकारी कर्तव्य निष्ठ थे
फिर क्यों सत्य, धर्म त्यागकर
अन्याय को गले लगाया?

सारी वीरता, नियम त्याग कर
मुझ पर ही क्यों शस्त्र उठाया?
माना आप वचनबद्ध थे
कौरवों प्रति कर्तव्य निष्ठ थे

लेकिन सिर्फ वचन के हेतु
क्यों अधर्म का साथ निभाया?
सुनो कर्ण तुम दानवीर थे
सच्चे मित्र और वीर पुरुष थे

पर क्या सिर्फ मित्रता हेतु
मार्ग अधर्म का था अपनाया
मुझ निहत्थे पर प्रहार कर
क्या तुमने कर्तव्य निभाया ?

यदि सच्चे तुम वीर पुरुष थे
तब तुम छल कभी न करते
जैसे डटा रहा मैं रण में
मेरे समक्ष तुम युद्ध ही करते

पर दुर्योधन जैसे कायर
छली पुरुष के सखा बने तुम
अपने सभी गुणों को तजकर
मानवता के शत्रु बने तुम

ऐसा कोई नहीं था तुम में
जो मुझसे युद्ध करता रण में
इसी लिए तुम सबने मिलकर
छल से घेरा मुझे युद्ध में

लेकिन देख वीरता मेरी
तीनों लोक हुए नतमस्तक
मरकर भी मैं अमर हो गया
और तुम सब कहलाए कायर

छल करना ऐसा कलंक है
जिसे हटा सकता ना कोई
इसी लिए मरणोपरांत भी
तुम में यश पाया न कोई।

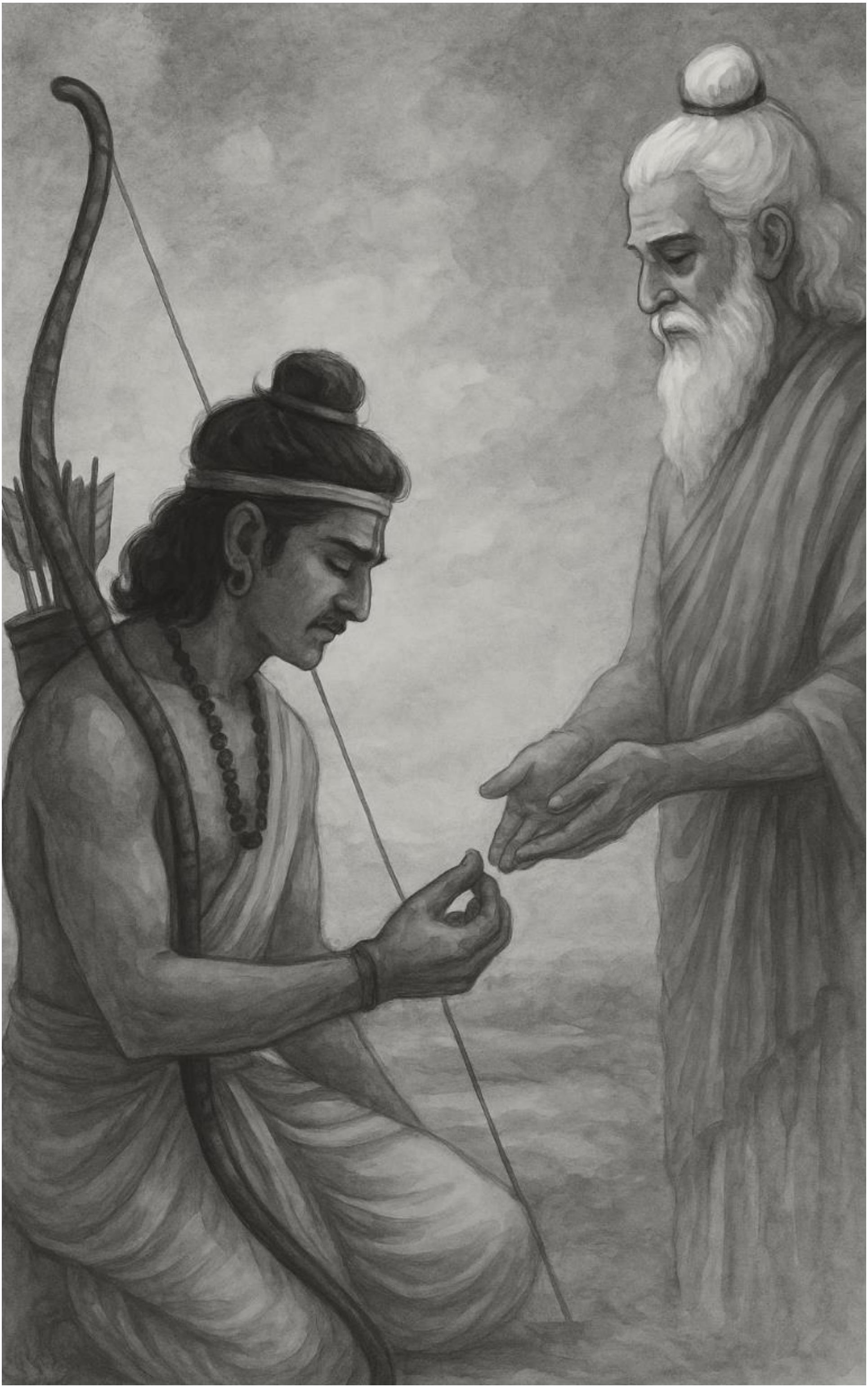

9- एकलव्य

एक लव्य मैं शिष्य तुम्हारा
प्रभु करता हूँ नमन चरणों में
अपनी श्रद्धा और लगन प्रभु
अर्पित करता हूँ चरणों में

हे गुरुवर तुम वीर महान
धरती गाती है यशोगान
देकर पार्थ को उत्कृष्ट ज्ञान
तुम कहलाए गुरु महान

पर गुरु की दृष्टि में प्रभुवर
सब शिष्य हैं एक समान
जाति, धर्म और भेद से ऊपर
सबका ही है सम स्थान

मैं था भील जाति का गुरुवर
शिष्य आपका नहीं बन पाया
गुरु पद देकर सिर्फ तुम्हें ही
मन, क्रम, वचन से था अपनाया

माँगी जब गुरु दक्षिणा प्रभु ने
तनिक भी भय मन में नहीं आया
काट अंगुष्ठ कर दिया समर्पित
कर्तव्य प्रभु मैंने निभाया।

पर प्रभु क्या ये भेद नहीं था?
जातिवाद का रुप नहीं था?
रुढ़िवादी सांमती रीति
अपनाने का दौर नहीं था?

प्रभु मैने दांये अंगुष्ठ से
ही तो ये अभ्यास किया था
त्याग, तपस्या और समर्पण
अपनाकर ही शिष्य बना था।

गुरु की गरिमा भूल प्रभु
तुमने ये अंगूठा मुझसे माँगा
मंशा आपकी जानकर भी
मैं अपने निर्णय से न भागा

प्रण मुझसे तुम ले सकते थे
रण में न शस्त्र उठाने का
या शपथ मुझको दे देते
शर को न हाथ लगाने का

गुरुवर दुःख मुझको बस इतना
गुरु सेवा नहीं पहचानी
धोखे से माँगा था अंगूठा
पद की लाज मिटा डाली

गुरु वही जो इस धरती पर
ज्ञान की जोत जगाता है
मन में छिपे अज्ञान के तम को
मन से दूर भगाता है

जब–जब भी प्रभु इस धरती पर
नाम आपका आयेगा
तब–तब गुरु भक्ति का उदाहरण
मेरा ही दिया जायेगा

10– रावण

हे रघुपति, हे दशरथ नंदन
करता हूँ चरणों में वंदन
दीनों के प्रभु तुम उद्धारक
कहलाते हो रघुकुल नंदन

माना मैं पापी और अधम था
बलशाली और अभिमानी था
श्रेष्ठ ब्राह्मण होकर भी मैं
प्रभु बस एक अज्ञानी ही था

ब्राह्मण कुल में जन्म लिया
पर कार्यों से मैं रहा अधर्मी
धन–पद के अभिमान में बहकर
पंडित से बन गया विधर्मी

भगिनी के कहने पर मैंने
माँ सीता का हरण किया था।
लेकिन प्रभु मैंने माता को
मन ही मन में नमन किया था.

नहीं दृष्टि बुरी डाली माँ पर
मन ही मन में शीश नवाता
कभी छुआ नहीं उस जननी को
बस ऊपर से भय दिखाता

मेरी सोने की लंका में
रही सुरक्षित प्रभु सीता माँ
शिव आराधक था इस कारण
रहीं पुनीता प्रभु सीता माँ

मुझे ज्ञात थी शक्ति थी आपकी
और आपका रूप हे भगवन
मरने को हाथों से तुम्हारे
सीता माँ को हरा था भगवन

आने वाले समय में भगवन
पूज्य कभी नहीं बन पाऊँगा
अपने दुस्साहस के कारण
नीच पतित ही कहलाऊँगा।

माना शास्त्रों का ज्ञाता था
महाज्ञानी और शैव भक्त था
पर झूठे अभिमान के कारण
होता अपमानित रहता था।

लंका पावन करने हेतु
माँ सीता का हरण किया था
चरण तुम्हारे लंका में हों
इस कारण ये कर्म किया था।

प्रभु आपके कर कमलों से
हर प्राणी का हो उद्धार
इसीलिए ये पाप किया था
क्षमा करो मेरे करतार।

जन–जन को संदेश है मेरा
करना ना अभिमान कभी
रहना सदा विनम्र सभी से
पथ से भटकना तुम न कभी

11- अर्जुन विषाद

कुरु क्षेत्र में युद्ध भूमि में
अर्जुन थे कर रहे विषाद
चारों ओर ही मेरे अपने
किस पर करुँ मैं पहले वार

खड़े सामने भीष्म पितामह
पाया जिनसे सदा दुलार
जिनकी छत्र छाया में रहकर
मन में आया दृढ़ विश्वास

और खड़े हैं गुरु द्रोण
जिनसे पाई विद्या अपार
धनुर्विधा सीखी थी जिनसे
हैं जिनके अगणित उपकार

सभी मित्र और बन्धु सखा हैं
कैसे शस्त्र उठाऊँ मैं
जिनके संग बीता है बचपन
कैसे रक्त बहाऊँ मैं

काँप रहे हैं हाथ मेरे
गाण्डीव न दे रहा मेरा साथ
कैसे करुँ मैं वध इन सबका
बचपन बीता जिनके साथ

लगती व्यर्थ मुझे अब सत्ता
हृदय में है बस हा–हाकार
देख के अपनों को इस रण में
मन दे रहा मुझको धिक्कार

अपनों का ही वध करके यूं
नहीं चाहता मैं अधिकार
जहाँ नहीं हैं मेरे अपने
वहाँ राज्य ही है बेकार

नहीं है मोह मुझे सत्ता का
नहीं चाहिए जय–जयकार
जहाँ नहीं हैं मेरे अपने
वह राज्य नहीं स्वीकार

12– कर्ण

पूछ रहा था कर्ण कुन्ती से
माँ क्या दोष ये मेरा था
जन्म दिया तुमने माँ मुझको
फिर क्यों पुत्र न तेरा था?

कहलाया मैं सूतपुत्र माँ
अधिकार सब छीन लिए
पग–पग पर अपमान मिला
क्या भूल हुई थी कुछ मुझसे?

मैं भी था एक वीर धनुर्धर
अर्जुन से बलशाली था
नाम अगर तेरा माँ मिलता
श्रेष्ठ धनुर्धर तब मैं ही था

सिर्फ लोक–लाज के कारण
तूने मेरा त्याग किया
भाइयों को न बताया सत्य
परिवार से दूर किया

नाम होता तेरे कुल का माँ
जो तू मुझको अपनाती
भाइयों का पथ दृष्टा होता
शान तेरी माँ ही होती

भटक गया सम्मान पाने को
पथ अधर्म का अपनाया
दुर्योधन जैसे साथी को
पाकर माँ मैं हरषाया

जीत धर्म की होती है
यह सब माँ मैं भूल गया
भटक गया था पथ से अपने
जो अधर्म का साथ दिया

दोष नहीं था क्या तेरा माँ
जो मैं पथ से भटका था
अपना लेती जो तुम मुझको
श्रेष्ठ पाण्डु पुत्र मैं होता

१३ भीष्म पितामह

देख समक्ष अर्जुन को अपने
भीष्म पितामह ने धैर्य खोया
सोच रहे थे धृतराष्ट्र ने
क्यों ये वैर का बीज था बोया

स्वयं को ही मन में धिक्कारा
एक–एक दृश्य मन में उतारा
कैसे प्रतिज्ञा में बंधकर
विध्वंस को क्यों मैं रोक न पाया

मैने केवल पितृ धर्म को
ही अपना कर्तव्य माना
पितृ प्रेम के ही कारण
सत्ता के सुख को पल में त्यागा

मत्स्यगंधा की आज्ञा को
शिरोधार्य करके फर्ज निभाया
एक कर्तव्य निष्ठ सेवक बन
पूर्ण राज्य का भार संभाला

लेकिन धर्म निष्ठ होकर भी
मैंने अधर्म का साथ निभाया
राजपुत्रों का साथ न देकर
दुर्योधन के पक्ष में आया

भरी सभा में द्रुपद सुता के
चीर हरण का बना साक्षी मैं
धर्म राज की द्यूत क्रीड़ा को
चाह कर भी मैं रोक न पाया

किए अधर्म हजारों मैने
सत्यवती माँ की छाया में
धर्म शास्त्र का ज्ञाता होकर
भी न कोई कदम उठाया।

सबसे क्रूर कृत्य में भी मैं
अधर्म के पथ से न घबराया
अर्जुन सुत अभिमन्यु को भी
मैंने ही उस व्यूह में फंसाया

सोलह वर्षीय उस बालक पर
अपना भुजबल मैने दिखाया
कैसे उस दुष्कर्म को करके
मेरा तनिक न मन घबराया

क्या ऐसे दुष्कर्म को करके
मैं वीरो में गिना जाऊँगा
क्या पाण्डुपुत्रों के समक्ष मैं
निरपराध कहला पाऊँगा

मैने सिर्फ प्रतिज्ञाबद्ध हो
अनाचार का साथ निभाया
और अधर्म के मार्ग पे चलकर
अपना नैतिक पतन कराया

अपने इस दुष्कृत्य का मुझको
आजीवन अनुताप रहेगा
महाभारत के युद्ध का उत्तरदायी
ये जग मुझे कहेगा

१४- बेबस उत्तरा

महाभारत के भीषण रण में
फैल रही थी करुण पुकार
कहीं कटे सिर और भुजा थीं
कहीं था लाशों का अम्बार

ढूँढ रहे थे सब अपनों को
फैल रहा था हा–हाकार
दूर खड़ी थी चित्र लिखित सी
विरह व्यथा से थी सरोबार

सुध–बुध खोकर वह पगली सी
चीख पड़ी थी हो बेहाल
नहीं दीख रहे थे अभिमन्यु
जिनका अंश था उसके पास

अभी बरस सोलह ही बीते
थी भोली भाली कन्या
छोटी उम्र में ही तो उसने
अभिमन्यु को पति चुना

नहीं जानती थी वो बाला
भीषण संकट आयेगा
बलशाली वो वीर पराक्रमी
छोड़ भंवर में जायेगा

आँखे पूछ रही थीं उसकी
मैंने क्या अपराध किया?
क्यों इतनी सी कम आयु में
वैधव्य अभिशाप मिला?

मात–पिता को मान दिया था
गुरु का भी सम्मान किया था
नहीं किसी का अहित किया था
फिर क्यों मुझ पर वज्र गिरा था?

कभी किसी के साथ हे ईश्वर
ऐसा तुम अन्याय न करना
जन्म पूर्व ही किसी शिशु के
सिर से पितृ छाया न हरना

15– कुन्ती

युद्ध शिविर से दूर निशा में
बैठी थी वो एकाकी
और शून्य में ताक रही थी
मान स्वयं को एक अभागी

सोच रही थी किस्मत ने
कैसी–कैसी गोटी फेंकी
राज कुमारी होकर भी
ठोकर खाई थी दर–दर की

जन्म लिया था राजमहल में
राजकुमारी कहलाई
पर अपनी ही नादानी से
यौवन में ही कुम्हलाई

दिया विधाता ने वैधव्य
कष्टों की बौछार हुई
पग–पग पर बाधाएँ आईं
किस्मत मानो रुठ गई।

दिया मुझे अपनों ने धोखा
पग–पग पर अपमान मिला
पूरा जीवन रही समर्पित
कहीं नहीं विश्राम मिला

नहीं हृदय से उसे लगाया
जिसको मैंने जन्म दिया
और रणभूमि में जाकर भी
उसका ना उपकार किया

माँग लिया पुत्रों का जीवन
अपनी उस सन्तान से
जिसको बीच भंवर में छोड़ा
था मैने निज स्वार्थ से

हुई कलंकित आज एक माँ
कुन्ती के अवतार में
यह कहकर रो पड़ी वह कुन्ती
रात्रि के अंधकार में

करना मुझको क्षमा कर्ण तुम
अच्छी माँ न बन पाई
पर तुझ जैसे वीर को जनकर
वीर–मात मैं कहलाई

१6- गान्धारी

प्रिय पुत्र दुर्योधन का
सुनकर निधन रह गई अवाक्
मौन हो गई वाणी उसकी
स्वप्न हो गए थे सब खाक

मैने जिस कुरूपुत्र की खातिर
संयम अपना छोड़ा था
उसके प्राण बचाने हेतु
निज संकल्प को तोड़ा था

आज उसी के मृत शरीर को
कैसे मैं छू पाऊँगी
जिस पर सारा प्रेम लुटाया
कैसे विदा कर पाऊँगी

बाँहों के झूले में झुलाकर
पग–पग चलना सिखलाया
नेत्रहीन बनकर भी उसको
आगे बढ़ना सिखलाया।

पर मेरे लालन–पालन में
कमी कहीं कोई रह गई थी
तभी सभी पुत्रों को खोकर
आज अकेली रह गई थी

भातृ–प्रेम में फंसकर मैंने
ये अनर्थ क्या कर डाला
बदले की चिंगारी ने
कुरू वंश को ही जला डाला

बस आँखें ही बन्द नहीं थी
उर को भी था बन्द किया
पुत्र मोह में फंसकर मैंने
कितना बड़ा अनर्थ किया।

पुत्र सरीखे पाण्डु पुत्रों को
न प्यार दिया मैंने
एक दुर्योधन की ही खातिर
छल का साथ दिया मैंने।

आज उन्हीं कर्मों की खातिर
मैं पीड़ा से घिर गई हूँ
सौ पुत्रों की जननी होकर
हाय अकेली रह गई हूँ।

माता भी होती है कुमाता
यह मैंने कर दिखलाया
पथ अधर्म का अपनाकर
कुरूवंश का मस्तक झुकवाया

जन–जन से विनती है मेरी
कभी कुटुम्ब में भेद न करना
संतति मोह में पड़कर के कभी
अपनों से विद्रोह न करना।

जीत–धर्म की ही होती है
चाहे मार्ग कठिन हो कितना
नाश अधर्म का ही होता है।
हो बलशाली चाहे जितना।

17– माँ उर्मिला

एक माँ उर्मिला एक माँ सीता
दोनों पावन जैसे गीता
दोनों निर्मल और पतिव्रता
माँ अनुसूया सम हैं पुनीता

माँ सीता ने प्रभु के संग ही
वन– वन में कष्टों को झेला
लेकिन उर्मिला माँ ने पति बिन
कठिन विरह को चुप–चुप झेला

राज भवन में राजसी सुख के
होते हुए भी रही संन्यासिनी
विरह अग्नि में तप–तप कर वह
बनी तेज से युक्त तपस्विनी

चौदह वर्ष बिताए पति बिन
झलक कभी भी देख न पाई
कैसे विरह की पीड़ा झेली
अपनी कभी न पीर बताई

जीत लिया निद्रा को उसने
किया सदा पतिव्रत का पालन
मन में बसाकर पति लखन को
वर्ष बिताए चौदह उन बिन

ऐसी त्याग की पावन मूरत
जन्मी नहीं धरा पर अब तक
परम पुनीता पतिव्रता माँ
उर्मिला जैसी हुई न अब तक

धरती जैसा संयम, धीरज
बस माँ उर्मिला में ही देखा
दोनों कुल की मर्यादा का
पालन करते माँ को देखा

ऐसी त्याग की मूरत को मैं
कोटि–कोटि करती हूँ वंदन
माँ सीता, अनुसूया सम ही
करती हूँ मैं इनका पूजन।

18– जटायु

यदि मानवता देखनी है तो
पक्षीराज जटायु को देखो
त्याग, वीरता, धर्म निष्ठता
के भण्डार उस वीर को देखो

जब लंकापति माँ का हरण कर
निज विमान से उड़ा वेग से
माँ सीता की रक्षा हेतु
वृद्ध जटायु गरजे वेग से

बिना किसी भी स्वार्थ के उसने
मानवता का धर्म निभाया
नारी के सम्मान की खातिर
प्राणों को जोखिम में डाला

दशरथ जैसे मित्र थे उनके
पिता अरुण से तेज था पाया
अन्त समय में प्रभु चरणों में
प्राण त्याग कर मोक्ष को पाया

माना पक्षी जनम था उनका
पर थे शूरवीर और त्यागी
रावण द्वारा घायल होकर
भी उसने न देह थी त्यागी

काट दिए थे पंख दुष्ट ने
पर वह वीर नहीं घबराया
कटे हुए पंखों से ही
उस वीर ने अपना धर्म निभाया

माँ सीता की खोज में निकले
राम लखन को शीश नवाया
सीता हरण की सूचना देकर
दक्षिण दिशा का पता बताया

कहने को तो पक्षी थे वे
लेकिन कृत्य अनोखा कर गए
माँ सीता का पता बताकर
धर्म हेतु बलिदान हो गए

ऐसी दिव्य आत्मा को मैं
कोटि–कोटि करती हूँ वंदन
पर हित प्राण न्योछावर करके
अमर हो गए अरुण के नंदन

लेखिका का परिचय

डॉ. रश्मि शर्मा एक प्रतिष्ठित शिक्षिका, कवयित्री और लेखिका हैं, जिन्होंने हिंदी संस्कृत और मनोविज्ञान विषयों में स्नातकोत्तर किया है। बचपन से ही अपनी माता से प्रेरित होकर उनके मन में धर्म के प्रति श्रद्धा और धार्मिक शास्त्रों को जानने की उत्सुकता बढ़ी। पौराणिक कथाओं और धार्मिक साहित्य में इनकी गहरी रुचि रही है। इनकी रचनाएँ इन्हीं विषयों की भावनात्मक और आत्मिक परतों को उजागर करती हैं।

विद्यार्थी जीवन से ही साहित्य में रुचि रखने वाली रश्मि जी ने कविता को आत्म–अभिव्यक्ति और आत्म–संवाद का माध्यम बनाया। इस प्रथम काव्य–संग्रह में उन्होंने पौराणिक पात्रों के भीतर छिपी भावनाओं, संघर्षों और द्वंद्व को अपनी दृष्टि से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है।

पढ़ने के साथ साथ वे लेखन से भी जुड़ी रही हैं और सहारनपुर से प्रकाशित ***सुखदा*** पत्रिका की संपादिका रह चुकी हैं। उन्होंने पारिवारिक दायित्वों का निर्वहन करते हुए संस्कृत में पीएच.डी और मनोविज्ञान विषय के अंतर्गत काउंसलिंग का डिप्लोमा भी किया।

डॉ शर्मा का मानना है कि पढ़ने–लिखने का कोई निश्चित समय या उम्र नहीं होती, व्यक्ति को हर उम्र में पढ़ते और सीखते रहना चाहिए। यही सोच उन्हें सतत लेखन और अध्ययन के लिए प्रेरित करती है।

उनका जन्म मेरठ में हुआ और वर्तमान में वे सहारनपुर में निवास करती हैं।